International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 03-05-2020; Accepted: 16-05-2020; Published: 06-06-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 3; 2020; Page No. 23-26

निर्मल वर्मा के निबंधों की भाषा-योजना

रोहित कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (तदर्थ) हिंदी विभाग, किरोड़ी मल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

आधुनिक युग में निबंध मानव की स्वाधीन चिंतन की उर्वर भूमि में उपजी एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसके नियम लेखक द्वारा ही अविष्कृत होते हैं| हिंदी साहित्य के सर्वाधिक प्रसिद्ध लेखक निर्मल वर्मा के निबंध-लेखन को देखने से ऐसा ही लगता है| वे लिखते भी हैं – "निबंध की विधा हमें भटकने की सुविधा देती है, बशर्ते हम रास्ता न भूल जाएँ…"1| विचारों और विश्वासों के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने और किसी दिशा की ओर बौद्धिक यात्रा शुरू कर देने से निबंध अस्तित्व में आता है| यही कारण है कि उन्होंने अपने पहले ही निबंध संग्रह 'शब्द और स्मृति' में निबंधों को 'पर्सनल ब्रुडिंग के निबंध' कहा है| निबंध में विषय के मौलिक दृष्टिकोण के साथ-साथ लेखक के निजत्व की भी अभिव्यक्ति होती है| इस दृष्टिकोण से रचनात्मक लेखन होते हुए भी निबंध अन्य विधाओं की साहित्यिकता से कुछ भिन्न विशेषताएँ धारण करते हैं| वे अपने तीसरे निबंध संग्रह 'ढलान से उतरते हुए' की भूमिका में लिखते भी हैं कि "कहानियाँ अकेले में लिखी जा सकती हैं, किन्तु निबंध नहीं|"2 उनका निबंधों के प्रति यह स्पष्ट विचार है कि निबंध बहस या बौद्धिक संवाद है जिसके लेखन में बौद्धिक उत्तेजना और प्रेरणा कार्य करती है| निर्मल वर्मा के निबंधों में आधुनिक समय में कला और संस्कृति का विश्लेषण एक भारतीय आत्म की खोज के लिए मौजूद है| उन्होंने स्वयं ही अपने निबंधों को 'गैर-आधुनिक निबंध' कहा है| उनके विषय उनकी विशिष्ट भाषा-योजना में अभिव्यक्त होते हैं| इस पेपर का लक्ष्य उन विशेषताओं को रेखांकित करना है|

1. विरोधी-युग्म की योजना

विरोधी युग्म का अर्थ है- विपरीत अर्थों वाले शब्दों का अंतर्संबंधित प्रयोग करना जिससे वैचारिक सम्पूर्णता की स्थिति विकसित हो| आधुनिक भाषाविज्ञान अर्थ को विभेद में देखता है| अन्य से केंद्र और केंद्र से अन्य अस्तित्व ग्रहण करते हैं| जैसे, दिन के लिए रात, प्रकाश के लिए अँधेरा, हिंसा के लिए अहिंसा आवश्यक है| एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं रहेगा| "लेवि-स्ट्रास का मानना है कि स्पष्ट रूप से पृथक विचारों के नीचे समान अर्थ निहित रहता है| इन निहित अर्थों को दो लघु विचारों के अन्दर विश्लेषित किया जा सकता है| इसमें एक विचार दूसरे का उल्टा होता है| विपरीत विचार के युग्मों को द्विआधारित प्रतिकूलता (बायनरी अपोजिशन) कहा जाता है|"3 निर्मल वर्मा के निबंध लेखन में विरोधी-युग्म की योजना बहुतायत में मौजूद है| उनके लेखन में दोनों पक्षों को समेट लेने से एक प्रकार की पूर्णता का आभास उत्पन्न होता है-

1. "हम मृतकों के बीच जीवित बचे हुए लोग हैं|"4
2. "सिर्फ एक जीवित वाक्य का एक मुर्दा अर्थ होता है|"5
3. "इतिहास की अभी ऐसी कोई दीवार नहीं बनी है जो शहर को कब्रगाह से अलग कर सके|"6
4. "अँधेरा (बाहर की दुनिया की तरह) रोशनी को ढंकता नहीं, सिर्फ उसे 'रिलीफ' देकर मुक्त हो जाता है|"7
5. "विज्ञान और दर्शन, ईश्वर और मनुष्य, लौकिक और अलौकिक के बीच जो दीवारें खड़ी हुई, उन्होंने मनुष्य को भी एक आर्थिक प्राणी, एक धार्मिक प्राणी, एक राजनीतिक प्राणी जैसे अलग-अलग कटघरों में विभाजित कर दिया है|"8

प्रस्तुत उद्धरणों से स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा विपरीत ध्रुवीय अर्थों को एक-दूसरे के आमने-सामने रख कर उस 'मध्य' को समाप्त कर देते हैं जो संपूर्णता को विभाजित करता है| इस योजना से वे उस जटिल यथार्थ को पकड़ पाते हैं जो आधुनिकता या विभाजन की प्रक्रिया में छूट गया है| यह किसी एक पक्ष का वर्णन करने की प्रवृत्ति से हट कर, दोनों ध्रुवों के वर्णन को व्यंजित करने की स्थिति से संबंधित है| जैसे, वे 'प्राइवेट' और 'सार्वजनिक' को एक – दूसरे में देखते हैं- "एक अलग जमीन, जहाँ 'प्राइवेट' और 'सार्वजनिक' अलग-अलग न होकर, दो सामने-सामने लगे आइनों की तरह एक-दूसरे को प्रतिबिंबित करते हैं|"9 यह 'अलग जमीन' ही निर्मल वर्मा की भाषिक निर्मिति का महत्वपूर्ण गुण है| भाषाविद डॉ. सुरेश कुमार लिखते भी हैं- "सकलता की सबसे संतोषजनक व्याख्या द्विचरता की शब्दावली में होती है (The 'whole' is explained best in term of binarity.)" 10|

2. प्रश्न-शैली में उत्तर की प्रस्तुति

निबंध की चिंतनशील भाषा लेखक के मन में किसी विषय के प्रश्नों से लगातार संवाद से उत्पन्न होती है| सरल शब्दों में कहा जाए तो, लेखक एक अमूर्त पाठक से लगातार संवाद करते हुए अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है| निर्मल वर्मा के लेखन में प्रश्न कुछ जटिल संरचना में प्रस्तुत होते हैं| वे मन में उठ रहे प्रश्नों का उत्तर प्रश्नों की शैली में देते हैं जिसका उत्तर 'हाँ/नहीं' के रूप में व्यंजित होता है| जैसे-

1. "क्या हम दुबारा आदिमनुष्य की 'प्रिमिटिव' चेतना के अवचेतन-लोक में लौट सकते हैं, जहाँ कला और मिथक के बीच कोई दीवार नहीं थी?"11
2. "ऐसी कोई चीज है क्या जिसे हम 'इतिहास की नींद' कह सकें, जहाँ हम एक लम्बे समय तक आत्मविस्मृति के स्वप्न में जीते हैं और अचानक ऐसा क्षण आता है जहाँ नींद टूट जाती है और हम पाते हैं कि

यथार्थ वैसा नहीं है, जो हमने स्वप्न में देखा था, किन्तु हम उसे स्वप्न से अलग करके भी नहीं देखना चाहते?"12

3. "यह क्या महज संयोग था कि हमारे यहाँ प्रकृति के इन आत्मीय उपकरणों के प्रति लगाव ने 'देशभक्ति' की भावना को जन्म दिया, जो राष्ट्र की सेक्युलर, और संकीर्ण अवधारणा से बहुत भिन्न था?"13
4. "और तब मैं अपने से पूछता हूँ कि 'बहते पानी' के साथ हिन्दू-मानस का इतना घना लगाव क्या इसलिए तो नहीं है कि उसमें मिथक और इतिहास का सम्पूर्ण भेद छिपा है?"14
5. हम इतिहास के तथ्यों से यह जान सकते हैं कि विदेशी हस्तक्षेप किसी संस्कृति को कैसे संकट में डाल सकता है, किन्तु कैसे यह संकट एक व्यक्ति की सांसत बन जाता है, जहाँ वह स्वयं अपनी जड़ों से उन्मूलित होने लगता है, और आत्म-उन्मूलन का यह बोध एक औपनिवेशिक संदर्भ में कितना भयावह अकेलापन ला सकता है- क्या इसका लेखा-जोखा हमें किसी इतिहास में मिल सकता है?"15

उनके लेखन में प्रश्न-शैली अधिक है यहाँ प्रश्न एक विस्तृत वर्णन के साथ आते हैं| इससे वे भाषा में आवेग उत्पन्न कर पाते है पर इसे भावुकतापूर्ण कहना गलत होगा| किन्तु किस्सा कहने की छवियाँ और प्रतीक-योजना भाषा में मौजूद है| आत्मसंदेह का भाव पाठक को लेखक बना देता है| प्रश्न शैली ऐसी ही एक युक्ति है| इस युक्ति पर ही शायद आलोचक सुधीश पचौरी ने कहा है – "निर्मल स्वयं अपने लिखे का सत्यापन करते हैं| वे अपनी वैधता स्वयं बनते हैं| उनके सूत्रों को उन पर ही घटित कर कम से कम एक आशय और वह भी पक्का पॉजिटिविस्ट किस्म का आशय तो पाया ही जा सकता है|"16

3. विशेषण व्यंजकता से उत्पन्न संकेतात्मक शब्दावली

निबंधों में "इतिवृत को हल्की सर्जनात्मक भाषा के सहारे रचना के स्तर पर उठा लिया जाता है"17 जिसकी आतंरिक योजना आतंरिक संकेतात्मक पदों में निहित होती है| निर्मल वर्मा की भाषा में विशेषणों-व्यंजकों का विस्तृत संसार दिखाई देता है| जैसे- शुद्ध कल्पना, पवित्र कल्पना, खंडित चेतना, खंडित आत्मा, खंडित क्षण लहुलुहान आत्मा, बीहड़ प्रयास आदि| "शब्दों में एक जटिल संजाल होता है जो स्वीकृत व्यंजकों के सहारे काम करता है|"18 शब्द अपनी योजना में एक-दूसरे टकराते हैं और एक नए द्वंद्वात्मक अर्थ की सृष्टि कर लेते हैं| यह नया अर्थ ही विषय को अपने पुराने इतिवृत से मुक्त कर सृजनात्मक अर्थ से जोड़ देता है| परंपरागत अर्थ को ठेस पहुँचा बनी इस अर्थ योजना को नए समीकरण कहना उचित होगा क्योंकि इन्हें पढ़ते हुए भी एक रोचक आनंद प्राप्त होता है| जैसे, उनके लेखन में 'सत्य' की कई छायाएँ विशेषणों के रोचक प्रयोग से बनती हैं-शाश्वत सत्य, सम्पूर्ण सत्य, भीषण सत्य, विकट सत्य, अकथनीय सत्य, अनुभूत सत्य, मूल्यवान सत्य, अनूठा सत्य, अविभाजित सत्य, भयावह सत्य, निजी सत्य, अतिमानवीय सत्य, सत्यहीन सत्य, आदिम सत्य, लोकतांत्रिक सत्य, दुर्लभ सत्य|

प्रस्तुत 'सत्य' शब्द के लिए निर्मल वर्मा द्वारा प्रयुक्त विशेषणों की जो योजना सामने आती है| उससे सिद्ध होता है कि 'सत्य' के भीतर दूसरे शब्दों के लिए अवकाश होता है| वे एक-दूसरे के भीतर से गुज़र सकते हैं| स्पष्ट कहा जाए तो सभी शब्द लिफाफों की तरह होते हैं जिसके भीतर अन्य लिफाफे रखे जा सकते हैं| भाषा में यह हमेशा होता रहता है जहाँ एक शब्द दूसरे से संवाद करता रहता है और इसी से भाषा समृद्ध होती है| भाषावैज्ञानिक रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव बोध की स्थिति लिखते हैं- "संबंधों का यह संरचनात्मक विधान प्रतीकात्मक वस्तुओं की सत्ता-संबंधी स्थितियों पर प्रकाश डालता है| हम संसार में वस्तुओं को अन्य वस्तुओं से संबंध के आधार पर ही पहचानते हैं| किसी पर प्रकाश तभी पड़ता है जब वह किसी दूसरी वस्तु के विरोध में आकर खड़ी होती है| हम बोध के धरातल पर जिस संसार का निर्माण करते हैं वह हमारी व्यतिरेकी/विरोध की वृति पर ही निर्मित रहता है|"19

4. भाषा में कोड-मिश्रण की स्थिति

किसी भाषा-समाज में एक से अधिक भाषा-कोड प्रचलित होते हैं| साहित्यिक कृतियों की भाषा में भी इस विविधता का प्रभाव दिखाई देता है| भाषा के वाक्य स्तर पर एक योजना कोड-मिश्रण इसका प्रमाणन है| "कोड-मिश्रण का अर्थ है अंतः वाक्य स्तर पर एक भाषा के भाषिक तत्वों या इकाइयों का दूसरी भाषा की सामान्य व्याकरणिक व्यवस्था में अंतरण करना"20| हिंदी के वाक्य में अंग्रेजी या अन्य भाषाओँ का प्रयोग एक आवश्यकता और प्रभाव उत्पन्न करने की युक्ति दोनों है| निर्मल वर्मा के निबंधों में अंग्रेजी शब्दों का बहुतायत में प्रयोग हुआ है-

1. "यह आलोचना कोई बाहर की चीज़ न होकर खुद लेखक के सृजनात्मक एडवेंचर से जुड़ी है|"21
2. "क्या अपने सत्य का रेफरेंस किसी ऐसे मूल्य में खोज सकती है|"22
3. "जैसे लिखना एक ऐसे स्पेस को निर्मित करता है जिसमें पुस्तक का समय संचालित हो सके|"23
4. "एक सेक्युलर राज्य व्यवस्था भी अपने आत्यंतिक चरित्र में धर्मपरायण हो सकती है, बशर्ते धर्म का वह अर्थ न हो जो 'रिलिजन' शब्द में ध्वनित होता है|"24
5. "साहित्य के मेग्नेटिक फील्ड में प्रवेश करते ही वह एक अद्भुत उज्जवलता, पवित्रता और ऊर्जा प्राप्त कर लेता है|"25
6. -सा, -से, -सी से अस्थिरता/अर्थ के धुंधलके का निर्माण

निर्मल वर्मा की वाक्य-संरचना का एक महत्वपूर्ण घटक '-से, -सी, -सा' जैसी योजना है जिससे वे अर्थ के बायनरी अपोजीशन के संधिस्थल को अस्थिरता प्रदान करते हुए उसे धुंधलके (अस्थिरता/अस्पष्टता) की योजना में ले आते हैं| आलोचक सुधीश पचौरी लिखते हैं- "धुंधलका उनके यहाँ एक विशेषण मात्र नहीं है बल्कि एक विचार है, बुनियादी व्यंजक है जो बहुत कुछ दबाए-छिपाए चलता है| वह उन्हें लेखकीय अर्थ की स्वतंत्रता देता है|"26 यह संशय को प्रकट करते हुए भी स्थिर दिखता है-

1. "दरसल हम ऐसे अजीब ज़माने में रह रहें हैं जब लेखक और कलाकार संत्रस्त प्राणी-से लगते हैं|"27
2. "वह लगभग अश्लील-सी लगती है, एक संस्कारहीन कर्म की तरह"28
3. "यूरोपीय मनुष्य की आदर्शीकृत छाती ने हिन्दुओं की आत्म छवि में जैसे सेंध-सी लगा दी"|29
4. "जीजस और बुद्ध का मौन अवश्य कुछ रहस्यमय-सा प्रतीत होगा, किन्तु एक कलाकार को उसमें शायद कुछ भी विचित्र नहीं जान पडेगा|"30
5. "क्या यह प्रतीक आज कुछ मैला-सा नहीं पड़ गया?"31

यहाँ 'सा, से, सी" की योजना अर्थ को सम्पूर्ण नहीं होने देती बल्कि विपरीत अर्थ की ओर मोड़ देने का संशय पैदा करती हैं| फिर भी निर्मल वर्मा का पाठ

संशययुक्त होते हुए भी मूल अर्थ में ही पढ़ा जता है| जैसे, 'प्राणी -से' नहीं 'प्राणी' ही या 'मैला-सा' नहीं 'मैला' ही| यही धुंधलका है जहाँ दबा-छुपा हुआ अर्थ अनुपस्थिति में भी कार्य करता रहता है|

6. अर्थ की विश्वसनीयता में मुहावरें

निर्मल वर्मा की भाषिक संरचना में एक महतवपूर्ण घटक मुहावरें हैं| मुहावरें भाषा की लाक्षणिक धरोहर होते हैं| ये भाषा में आकर्षण और प्रभावक्षमता को बढ़ाते हैं| ये भाषा में अर्थ के अविश्वास को कम कर सांस्कृतिक निष्कर्ष का भाव प्रस्तुत करते हैं| यह मूलत मिथकीय भाषा के व्यंजक हैं जबकि पढ़ा इन्हें तथ्यात्मक रूप से जाता है| जैसे-

1. "सब देवताओं को ठुकराकर अंत में इतिहास के देवता के आगे घुटना टेक देते हैं|"32
2. "एक ऐसा तथ्य जिससे हम अब तक मुँह चुराते रहे थे|"33
3. "दोनों महाकाव्य हमें अभिभूत करते हैं, क्योंकि वे जीवन के किसी अनुभव से-वह चाहे कितना ही भयावह, कटु और जघन्य क्यों न हो, आँखें नहीं चुराते|"34
4. "एक महान लेखक भविष्य में होने वाली घटनाओं को अपने 'वर्तमान' में उसी तरह सूँघ लेता है…|"35
5. किन्तु इससे बड़ी आत्मछलना कोई नहीं होगी यदि हम भारतीय संस्कृति के इन तत्वों को शाश्वत मानकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें|"36

किसी संस्कृति में प्रचलित भाषा के इन प्रभावशाली 'रेडीमेड यूनिट' के प्रयोग से निर्मल वर्मा अपनी भाषा योजना को संदेह रहित बना पाते हैं| मुहावरें भाषा पर अतिरिक्त दबाव डालते हैं और अर्थ के एक ही पक्ष को अधिक मजबूत कर देते हैं| निर्मल वर्मा के वाक्यों में भी मुहावरे यही करते हैं| अर्थ को अनिवार्य बना देते हैं जिससे शेष पक्ष अनुपस्थित हो जातें हैं|

निर्मल वर्मा अपने निबंधों में 'भारतीय आत्मा' को आधुनिकता के छोर से निकाल कर दूसरे युग्म 'गैर-आधुनिक' की ओर ले गए हैं| जीवन-शैली और चिंतन को इतने स्पष्ट विभाजन के साथ प्रस्तुत कर उन्होंने हिंदी साहित्य में विचार और बहस के स्तर को कुछ गंभीरता ही दी है| उनके निबंध लेखन में आत्मकथन कभी भी आत्मसंदेह की प्रवृत्ति से दूर नहीं जाते| ये विशेषता उन्हें विश्वसनीय बनाती है तो पाठक को भी चिंतन का निजी स्पेस प्रदान करती है| उनका लेखन अपनी योजना को स्वयं पाठक के समक्ष खोलता जाता है और लगभग 'यह देखो' के भाव से यात्राओं पर ले जाता है| उनके निबंधों की शक्ति उनकी भाषा है और उनकी भाषा में आवश्यक रूप से संप्रेषणीयता का गुण है| कभी युग्म, कभी उद्धरण, कभी आत्मकथन, कभी संवाद, कभी व्यंग्य तो कभी उत्तेजना, सभी युक्तियाँ मिलकर निर्मल वर्मा को वह धरातल प्रदान करती हैं जहाँ वे आधुनिक मनुष्य की आत्मा को बहस का विषय बना देते हैं| यह अवसर उनके भीतर का कथाकार और सांस्कृतिक चिन्तक एक साथ करता है| वे गंभीर विषयों के साथ-साथ उन विषयों (जिसे तर्कहीन कह कर छोड़ दिया गया था) को भी चिंतन का हिस्सा बड़ी सहजता के साथ बना देते हैं जो अब तक बहस से बाहर खड़े थे| इस प्रवृत्ति पर आलोचक वागीश शुक्ल लिखते हैं- "निर्मल वर्मा बहुत 'परसुएसिव' लिखते हैं| यानी एक बात से अगली बात कुछ इस तरह पैदा होती है जैसे सिर्फ उसी को उससे पैदा होना था| इस तरह एक रैखिक अनुक्रम के रूप में उनके लेख सामने आते हैं जिसमें निचोड़ ज्यादा है तर्क कम|"37 इस तरह निर्मल की भाषा पर विश्वास और संदेह का भाव एक साथ आता है जो एक-दूसरे के बिना नहीं है| उनके संकेतों में उन्हें पढ़ते जाना विश्वसनीय जमीन पर चलने जैसा ही है| निर्मल वर्मा कुछ छुपाते नहीं, न विचार में और न ही भाषा में, यही बात उन्हें ईमानदार लेखक बनाती है|

संधर्व सूची

1. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (चौथा संस्करण-2006) पृष्ठ- 9
2. निर्मल वर्मा, ढलान से उतारते हुए, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, (चौथा संस्करण-2006) पृष्ठ- 8
3. विजय शंकर उपाध्याय, गया पाण्डेय, मानवशास्त्रीय विचारक एवं उनकी विचारधाराएँ, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली (2001) पृष्ठ- 234
4. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2006) पृष्ठ- 24
5. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2006) पृष्ठ- 136
6. निर्मल वर्मा, इतिहास स्मृति और आकांक्षा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (2010) पृष्ठ- 17
7. निर्मल वर्मा, सर्जना पथ के सहयात्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2008) पृष्ठ- 155
8. निर्मल वर्मा, भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2001) पृष्ठ- 17
9. निर्मल वर्मा, आदि अंत और आरंभ, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2010) पृष्ठ- 142
10. गवेषणा (पत्रिका) 63-64/1994 (सुरेश कुमार – अनुवाद: अर्थ, स्वरुप और पद्धति) पृष्ठ- 86
11. निर्मल वर्मा, कला का जोखिम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2001) पृष्ठ- 30
12. निर्मल वर्मा, भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2001) पृष्ठ- 28
13. निर्मल वर्मा, आदि अंत और आरंभ, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2010) पृष्ठ- 12
14. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2006) पृष्ठ- 129
15. निर्मल वर्मा, इतिहास स्मृति और आकांक्षा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (2010) पृष्ठ- 22
16. सुधीश पचौरी, निर्मल वर्मा और उत्तर-उपनिवेशवाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली (2003) पृष्ठ- 17
17. रामस्वरूप चर्तुर्वेदी, हिंदी गद्य: विन्यास और विकास, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली (2008) पृष्ठ- 141
18. सुधीश पचौरी, देरिदा: विखंडन की सैद्धांतिकी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (2006) पृष्ठ- 17
19. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, संरचनात्मक शैलीविज्ञान, आलेख प्रकाशन, दिल्ली (1979) पृष्ठ- 74
20. भोलानाथ तिवारी, मुकुल प्रियदर्शनी (सं.), हिंदी भाषा की सामाजिक

संरचना, साहित्य सहकार, दिल्ली (1994) पृष्ठ-33
21. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2006) पृष्ठ-62
22. निर्मल वर्मा, ढलान से उतारते हुए, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, चौथा संस्करण-2006, पृष्ठ- 15
23. निर्मल वर्मा, भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2001) पृष्ठ- 148
24. निर्मल वर्मा, साहित्य का आत्मसत्य, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2010) पृष्ठ- 20
25. निर्मल वर्मा, दूसरे शब्दों में, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2008) पृष्ठ-15
26. निर्मल वर्मा, निर्मल वर्मा और उत्तर-उपनिवेशवाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली (2003) पृष्ठ- 20
27. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2006) पृष्ठ-38
28. निर्मल वर्मा, कला का जोखिम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2001) पृष्ठ- 19
29. निर्मल वर्मा, भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2001) पृष्ठ- 58
30. निर्मल वर्मा, भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2001) पृष्ठ- 111
31. निर्मल वर्मा, आदि अंत और आरंभ, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2010) पृष्ठ- 14
32. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2006) पृष्ठ- 94
33. निर्मल वर्मा, कला का जोखिम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (2001) पृष्ठ- 46
34. निर्मल वर्मा, आदि अंत और आरंभ, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2010) पृष्ठ- 67
35. निर्मल वर्मा, दूसरे शब्दों में, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2008) पृष्ठ-140
36. निर्मल वर्मा, ढलान से उतारते हुए, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (2006) पृष्ठ- 115
37. नन्दकिशोर आचार्य (सं.), अवलोकन: निर्मल वर्मा, (वागीश शुक्ल : निर्मल वर्मा का सोचना) वाणी प्रकाशन, दिल्ली (2003) पृष्ठ- 150